कस्तूरी कुण्डल बसै: स्त्री अस्मिता की कहानी

शोध छात्रा

कमलप्रीत कौर

हिन्दी विभाग

पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला, पटियाला, भारत।

ई.मेल- kpreetbhatti25@gmail.com

शोध सार

अस्मिता अर्थात अपनी सत्ता का भाव अपनी पहचान। वर्तमान समय में साहित्य में स्त्री अस्मिता, दलित अस्मिता इत्यादि पर भरपूर काम किया जा रहा है, परंतु स्त्री अस्मिता का मुद्दा अपने चरम पर दिखाई देता है। देश की आधी आबादी की संख्या देने के बाद भी आज स्त्री को उसके अधिकार समानता प्राप्त नहीं हो पाई है। स्त्री अस्मिता के लिए अनेकों कार्य किये जा रहे हैं परंतु फिर भी स्त्री अपने अधिकारों को लेकर सजग नहीं है ऐसे में समाज के साथ-साथ स्वयं स्त्रियों का भी यह दायित्व बनता है कि वह अपने भीतर की सत्ता को पहचान कर पुरुषवादी समाज में अपने वर्चस्व को कायम करें। अपने भीतर की सत्ता,अस्मिता को पहचान कर पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर आगे बढ़ती ।

बीज शब्द- स्त्री, अस्मिता, समानता।

प्रस्तावना-

मनुष्य चिंतनशील प्राणी हैं। उसकी इसी चिंतनपरक विचारधारा से आधुनिक समाज में कई प्रकार की अस्मिताओं का आविर्भाव हुआ जैसे- दलित अस्मिता, जातिगत अस्मिता, क्षेत्रीय अस्मिता इत्यादि इनमें से एक और अस्मिता है स्त्री अस्मिता। स्त्री अस्मिता का प्रश्न वर्तमान चिंतन का सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न है। स्त्री अस्मिता आज पूरे विश्व में ध्रुवीकरण का रूप लेती जा रही है। अस्मिता अर्थात् स्वयं की पहचान, अपनी सत्ता का भाव से है । बृहत् हिन्दी कोश के अनुसार, "अस्मिता (स्त्री सं.) का अर्थ है अहंता, अहंकार, अस्तित्व, विद्यमानता अथवा होने का भाव अर्थात् वस्तु के स्वरूप का सम्यक संबोध कराने वाली तत्वमयता उसकी अस्मिता है।"[1] स्त्री अस्मिता दरअसल पुरुष के समान स्त्री का समान अधिकार, स्त्री के प्रति विवेकामूलक दृष्टि तथा स्त्री द्वारा पुरुष के वर्चस्व का प्रतिरोध है। स्त्री का स्वतंत्र हो कर निर्णय लेना या आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो जाना ही उसकी अस्मिता नहीं है सही मायने में स्त्री अस्मिता का अर्थ स्त्री के प्रति समाज का दृष्टिकोण और मानसिकता में बदलाव जिसमें स्त्री का खुद का दृष्टिकोण भी शामिल है।

अस्मिता शब्द आज के युग संदर्भ में बहुप्रचलित एवं बहुप्रचारित शब्द है। वैचारिक परिवर्तनों ने इस शब्द को गति प्रदान करने का कार्य किया है। इसने हाशिये पर धकेल दी गयी स्त्री को उठा कर केन्द्र में स्थापित किया है। भूमंडलीकरण, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों के कारण भारतीय समाज में नारी अवधारणा को बल मिला है। ऐसा नहीं है कि नारी अस्मिता का स्वर बीसवीं सदी में आ कर ही मुखरित हुआ। इससे पहले भी वैदिक काल में हमारे धार्मिक ग्रंथों में नारी अस्मिता की झलक देखी जा सकती है। यजुर्वेद के पाँचवे सुक्त के दसवे मंत्र के अनुसार,"हे स्त्री! तू स्वयं को पहचान, तू

सिंहस्वरूपा है। तू शत्रु रूपी मृगों का मर्दन करने वाली है। स्वयं में सामर्थ्य उत्पन्न कर। हे नारी ! तू अविद्या आदि दोषों पर सिंहनी की तरह टूटने वाली है। दिव्य गुणों के प्रचार्थ स्वयं को शुद्ध कर। हे नारी ! तू दुष्कर्मियों एवं दुष्टजनों का सिंहनी के समान विद्वंस करने वाली है। धार्मिक जनों के हितार्थ स्वयं को दिव्यम गुणों के अलंकृत कर।[2] अर्थात् हमारे धार्मिक ग्रंथों ने भी स्त्री अस्मिता एवं स्त्री की स्वतंत्र सत्ता का समर्थन किया है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि स्त्री अस्मिता को बल भले ही बीसवी सदी में आकर मिला हो किन्तु इसका बीजारोपण वैदिक काल से ही आरम्भ हो गया था। स्त्रियों का अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष उतना ही पुराना है जितनी की पितृसत्तात्मक व्यवस्था है। पितृसत्ता अगर स्त्रियों को पुरुष के अधीन रखने के लिए तमाम तरह के बंधनों में जकड़ने का नाम है तो स्त्री अस्मिता उन बन्धनों से मुक्त होने के लिए विद्रोह करने और स्त्री- पुरुष की समानता के लिए किए जाने वाले संघर्ष का नाम है।

आज के समय में जब स्त्री अस्मिता, स्त्री जागृति, स्त्री अस्तित्व को लेकर अनेकों कार्य-कलाप किए जा रहे हैं, तो एक प्रश्न आवश्यक पैदा होता है इन सब कार्य कलापों को सफल बनाने में स्त्री का क्या योगदान है? स्त्री खुद अपनी अस्मिता को लेकर कितनी जागरूक है।

□कस्तूरी कुण्डल बसै

मृग ढूंढे बन माहि□[3]

जिस प्रकार एक मृग कस्तूरी की सुगंध में मदमाता हुआ वन-वन घूमता रहता है किन्तु उसे यह ज्ञात नहीं रहता कि यह सुगंधित कस्तुरी उसके ही भीतर विद्यमान है, ठीक उसी प्रकार स्त्री भी अपनी अस्मिता अपने अस्तित्व की खोज में इधर-उधर भटकती रहती है। किन्तु मृग की भांति उसे यह नहीं पता चलता कि जिस अस्मिता को वह खोज रही है वह उसी के ही भीतर मौजूद है और उसे स्वयं ही इसे ढूँढना होगा। इसके द्वारा ही उसे अपने व्यक्तित्व को एक नई पहचान देनी है। स्त्री को खुद अपने लिए अपने व्यक्तित्व एवं जीवन सार्थकता के लिए आवाज़ उठानी पड़ेगी। इसी की एक सुन्दर उदाहरण हिन्दी की बहुचर्चित आत्मकथा 'कस्तूरी कुण्डल बसै' है। जिसकी नायिका कस्तूरी पितृसत्तात्मकता व्यव्यस्था द्वारा लगाये गए बंधनों से खुद को मुक्त कर स्त्री पुरुष की समानता के संघर्ष में जुट जाती है।

इक्कीसवी सदी की अग्रणी हिन्दी लेखिकाओं में से एक मैत्रेयी पुष्पा हैं। उनके द्वारा रचित 'कस्तूरी कुंडल बसै' उनकी आत्मकथा का प्रथम खंड है। जिसको दो भागों में विभाजित किया गया है। प्रथम भाग मैत्रेयी की माँ कस्तूरी के जीवन से संबंधित है अपनी इस आत्मकथा में लेखिका ने अपनी माँ कस्तूरी के निजी जीवन का वास्तविक खाका प्रस्तुत किया है। इसमें मैत्रेयी ने अपनी माँ कस्तूरी के जीवन के संबंधित तमाम घटनाओं को उद्घाटित किया गया है। आत्मकथा का द्वितीय भाग 'गुड़िया भीतर गुड़िया' मैत्रेयी पुष्पा के अपने जीवन से संबंधित है। मैत्रेयी ने अपने लेखन के माध्यम से स्त्री चिंतन को नई मूल्यवत्ता तथा अर्थवत्ता प्रदान करने का कार्य किया है शायद उनकी इस लेखनी के पीछे उनकी माता कस्तूरी की सोच काम कर रही थी।

'कस्तूरी कुंडल बसै' आत्मकथा का आरंभ कस्तूरी के विद्रोही स्वर □मैं विवाह नहीं करूंगी□ से होता है धीरे से बोली हुई बात सभी के कानों में दहाड़ सी गूंजती है। जिसे मां घर और परिवार की मर्यादा के विरुद्ध मानते हुए कस्तूरी को कोसती है, "कस्तूरी लड़कियों से ऐसे दुस्साहस की उम्मीद कौन कर सकता है? वे तो माँ-बाप के सामने सिर उठाकर बात तक नहीं कर सकतीं, मरने का शाप हँस-हँसकर झेलतीं हैं

और गालियाँ चुपचाप सहन करती हुई अपनी शील का परिचय देती हैं, तु मर्यादा तोड़ने पर आमादा क्यों हुई?"[4] सोलह वर्षीय कस्तूरी विवाह नहीं करना चाहती वह खुद से पूछती है ब्याह क्यों होता है ? उत्तर एक नहीं कई आते। जिनसे वह घबरा जाती है कि दोबारा ब्याह के बारे में नहीं सोचना चाहती अत: बकोशिश ब्याह के लिए सहमति-असहमति भुलाकर वह दिन-भर बरहे में (खेतों पर) बछड़े-बछियों और उन चिड़िया-तोतों के साथ रहती थी, जिनके लिए ब्याह के झमेले न थे।[5] समाज में लड़की के विवाह की अनिवार्यता की परम्परा का विरोध कस्तूरी साहस के साथ करती है। कस्तूरी विवाह को स्त्री के पांव की बेड़ी मानती है। उसके लिए विवाह उसके और उसकी अस्तित्व की पहचान की खोज के आड़े आने वाले पत्थर के समान है। कस्तूरी विवाह के नाम पर किसी भी घूंटे से बंध जाना एक बंधन मानती है। कस्तूरी की स्त्री चेतना कुछ कर गुज़रने पर अमादा है। सुविधाओं के आभाव के चलते हुए भी वह तो पढ़ लिखकर अपने उज्जवल भविष्य की कामना कर रही है, पढ़ाई के लिए कलम, खड़िया जैसे साधन प्राप्त करना कस्तूरी जैसी लड़की के भाग्य में है ना बस में। उसने धरती की नरम रेत को तख्ती माना है और उंगली ही कलम बना ली। कागज पर ओलम लिखी है ओलम के अक्षर जोड़कर मात्रा मिलाकर शब्द बनाना सीखने लगी।"[6] किंतु भाग्य ने कस्तूरी के लिए कुछ और ही सोच रखा था। प्रतिकूल परिस्थितियों के चलते आठ सौ रुपये की खातिर लड़की को लड़कों पर न्यौछावर कर दिया जाता है। किसी गाय बकरी की तरह उसका भी सौदा कर दिया जाता है। अपने प्रति अपनों का ऐसा स्वार्थपूर्ण व्यवहार कस्तुरी को आहत करता है जिसके कारण कस्तूरी को अपने जीवन से घृणा होने लगती है। विवाह के कुछ समय पश्चात ही 18 महीने की बच्ची को कस्तूरी के हवाले कर पति भी दुनिया को अलविदा कह देता है। इस सब के बाद भी कस्तूरी हिम्मत नहीं छोड़ती संघर्षयुक्त विपरीत्ताओं के बीच अपनी अस्मिता की तलाश में लग जाती है।

कस्तूरी के स्त्री जीवन ने करवट लिया

बंदक ज़िन्दगी मुक्त होना चाहती है।

देश में गुँजती नेताओं की वाणी से जो सूत्रवाक्य निकलते, उनमें से एक वाक्य था-स्त्री शिक्षा।[7] कस्तूरी स्त्री की निरक्षरता को ही उसका दुरभाग्य मानती है। इस लिए वह अपनी अलग पहचान का रास्ता शिक्षा के द्वारा खोजती है। पुरातन रुढियों, सामाजिक वर्जनाओं को तोड़ती कस्तूरी पढ़ना चाहती है। औरत के मन में बंद गांठे खुलने लगीं। पढ़-लिख कर आदमी ज्ञान की उस दुनिया में पहुँच सकता है जहाँ वह अपने आप को देख सके कि माहौल में उसकी तस्वीर क्या है।"[8] जहाँ औरत को घर की चौखट लांघने की छुट न थी, ऐसी प्रथाओं के चलते कस्तूरी ने खुद को घर से बाहर निकाल कर स्वयं को संवारने का कार्य किया। वह परम्परागत समाज से टकराते हुए अपने अस्तित्व को नए सिरे से परिभाषित करने के संघर्ष में जुड जाती है। वह समझती हैं कि उसे अपनी सार्थकता, अपनी सत्ता अपने ही भीतर खोजनी पड़ेगी। कोई भी उसे यह पहचान नहीं दिला सकता। कस्तूरी खुद अपने अस्तित्व को खोजने की राह पर निकल पड़ती है। इसलिए उसे समाज के ताने भी सुनने पड़ते हैं, यह रांड क्या साड़ हो गई। ना छोरी पर ममता, ना बूढे ससुर का रहम। पढ़ाई लिखाई का भजन करती हुई दोनों को रौंद रही है। अरे तू डॉव-डॉव डोलेगी तो बच्चों की ऐसी ही गति बनेगी। बनी है महात्मा गांधी की चेली।[9] अपने ही समाज अपने ही लोगों के द्वारा कस्तूरी को बहुत सी मानसिक यातनायें झेलनी पड़ती हैं लेकिन तमाम मुश्किलों के बावजूद भी समाज को चुनौती देते हुए कस्तूरी आगे बढ़ती जाती है। अपनी निजी स्थिति और घर परिवार में अस्वीकार्य चीजों के विरोध से मानव और व्यक्ति विरोधी निरकुंशता को ललकारती हुई अपने साथ हो रहे अन्याय का प्रतिकार कर मुक्ति के लिए

संघर्षरत होती है। वह इन सब परिस्थितियों का विरोध करते हुए स्वतंत्र मार्ग पर चलकर जीवन की सार्थकता को सिद्ध करती है। कस्तूरी के द्वारा किया गया यह प्रयास अपने आप में बहुत बड़े परिवर्तन और क्रांति का प्रतीक है। इतने कड़े संघर्ष के फलस्वरूप कस्तूरी नारी अस्मिता को पहचान कर जीवन की सार्थकता को खोजने में सफल रहती है।

कस्तूरी पारंपरिक विधवा की भूमिका का परित्याग कर प्रशिक्षित ग्राम सेविका के रूप में एक नौकरीपेशा स्वावलंबी स्त्री की भूमिका में उपस्थित होती है। वह गांव की औरतों को भी प्रेरित करते हुए कहती है, "देखो, हम अपनी तकदीर बदल तो नहीं पाते, सँवार तो सकते हैं। ताजिंदगी पिछली यादों और दुर्भाग्यों को रोते-पीटते रहें तो आगे क्या बनेगा।"[10] कस्तूरी का यह प्रयास है कि वह उन तमाम औरतों के लिए प्रेरणास्पद बने जो उस की तरह विपरीत परिस्थितियों के चलते पिछड़ गई हैं। कस्तूरी अपनी बेटी मैत्रेयी को भी आत्मनिर्भर बनते हुए देखना चाहती है। वो नहीं चाहती की उसकी बेटी केवल घर गृहस्थी में उलझकर रह जाये, लेकिन अब मेरी बेटी का मामला है। मेरी कोख से जन्म लेने वाली का। मैं इसको उसे खड्ड में नहीं गिरने दूंगी, जिसमें गिरकर औरत जीवन भर निकलने को छटपटाती रहती है और एक दिन खत्म हो जाती है।[11] कस्तूरी चाहती है कि उसकी बेटी पढ़-लिख कर आत्मनिर्भर बने, वह अपनी बेटी मैत्रेयी को आर्थिक रूप से स्वावलंबी बनते हुए देखना चाहती हैं। कस्तूरी के द्वारा अपनी बेटी के लिए लिया गया यह निर्णय उसके साहस और स्वतंत्र अस्तित्व का सूचक है। कस्तूरी अपनी अस्मिता के लिए पूरे पितृसत्तात्मक समाज का सामना करने के लिए तात्पर्य है। कस्तूरी की यह सोच केवल अपने या अपनी बेटी तक ही सीमित नहीं है बल्कि वह तो एक समाज सेविका के रूप में सब औरतों का कल्याण करना चाहती है।

निष्कर्ष : प्रस्तुत आत्मकथा में कस्तूरी नारी अस्मिता और नारी चेतना के आरम्भ का प्रस्ताव कही जा सकती है। वह स्त्रियों पर थोपी गई नियति को अस्वीकार कर अपनी नियति खुद गड़ती है। कस्तूरी ने अपने जीवन के संघर्षों, कठिनाईयों से कभी हार मानना तो सीखा ही नहीं। इस आत्मकथा में कस्तूरी स्त्री-सशक्तिकरण की एक ऐसी उदाहरण प्रस्तुत करती है जो हमारे समाज के लिए प्रेरणास्पद है। अगर एक स्त्री चाहे तो वह पारंपरिक रूढ़ सोच से खुद को मुक्त कर स्वावलंबी बन सकती है। जरूरत है तो सिर्फ उसे अपने भीतर बसी कस्तूरी रूपी स्त्री चेतना की सुगंध को पहचानने की, अगर वह अपने भीतर की इस चेतना शक्ति को पहचान ले तो उसे इस समाज में अपना स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित करने से कोई नहीं रोक सकता। वह पुरुषों के साथ हर क्षेत्र में कदम मिलाकर अपनी उपस्थिति और अस्मिता का एहसास करवा सकती है। देश की कुल आबादी का आधा प्रतिशत स्त्रियाँ है जरुरी है की वे जागरूक बने, अपने अस्तित्व को पहचाने, क्यों की उनके विचार, कार्यशैली, मूल्य, पद्धति बेहतर परिवार, समाज, और राष्ट्र निर्माण में महत्त्वपूर्ण है। जिससे कि भविष्य में स्त्री अपने मानव होने के सम्पूर्ण अधिकार जरुर पाएगी, अपनी अस्मिता को सौ फीसदी पाने में सफल होगी।

संदर्भ सूची:-

[1] बृहत् हिन्दी कोश,
[2] यजुर्वेद संहिता सरल हिन्दी भावार्थ सहित, संस्कृत साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ.53
[3] कबीर ग्रंथावली, सं श्यामसुंदरदास, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग पृ.271
[4] मैत्रेयी पुष्पा, कस्तूरी कुण्डल बसै, राजकमल प्रकाशन, 2009
[5] वही पृ.9
[6] वही पृ.30
[7] वही पृ
[8] वही पृ
[9] वही पृ.42
[10] वही पृ.47
[11] वही पृ.62